UGC APPROVED
CARE LISTED JOURNAL
GOVT. OF INDIA RNI NO. - UPBIL/2015/62096
ISSN 2229-3620

B

शोध संचार बुलेटिन

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY QUARTERLY BILINGUAL
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

★ Vol. 10 ★ Issue 37 ★ January to March 2020

Editor in Chief
Dr. Vinay Kumar Sharma
D. Litt. - Gold Medalist

sancHar
Educational & Research Foundation

Scanned with CamScanner

GOVT. OF INDIA RNI NO. - UPBIL/2015/62096

ISSN-2229-3620

UGC APPROVED
CARE LISTED JOURNAL

JOURNAL OF
ARTS, HUMANITIES AND SOCIAL SCIENCES

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPILANARY QUARTERLY BILINGUAL PEER REVIEWED REFERED RESEARCH JOURNAL

शोध संचार बुलेटिन

• Vol. 10 • Issue 37 • January to March 2020

संपादक मण्डल

प्रो० योगेन्द्र प्रताप सिंह
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रो० सुशील कुमार शर्मा
मिजोरम विश्वविद्यालय, मिजोरम

प्रो० अरूण कुमार भगत
महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतीहारी बिहार

प्रो० हेमराज सुन्दर
महात्मा गाँधी संस्थान, मोका, मॉरीशस

प्रो० संतोष कुमार शुक्ला
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रो० पवन शर्मा
मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ

प्रो० करूणा शंकर उपाध्याय
मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई

प्रो० अरविन्द कुमार झा
बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रो० पदम कान्त
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रो० अर्जुन चव्हाण
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर, महाराष्ट्र

प्रो० श्रद्धा सिंह
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रो० नागेन्द्र अम्बेडकर सोले
केन्द्रीय विश्वविद्यालय, राजस्थान

प्रधान संपादक
डॉ. विनय कुमार शर्मा
अध्यक्ष
संचार एजुकेशनल एण्ड रिसर्च फाउण्डेशन, लखनऊ

संचार एजुकेशनल एण्ड रिसर्च फाउण्डेशन, लखनऊ (उ0प्र0), भारत द्वारा प्रकाशित

Scanned with CamScanner

CONTENTS

S. No.	Topic		Page No.
1.	कथादेश व अन्य पत्र–पत्रिकाओं में प्रगतिवादी विचारधारा : एक मूल्यांकन	जगदीश प्रसाद संकुरिया	1
2.	महर्षिदयानन्दकृत यजुर्वेदभाष्य में यज्ञ से सृष्टिप्रक्रिया	प्रमोद डॉ0 सुधीर कुमार शर्मा	5
3.	स्वयं प्रकाश के कथा साहित्य में परिलक्षित भूमण्डलीय संस्कृति	अनिल कुमार गुप्ता	9
4.	"बालिका से वधू": ठेठ ग्रामीण संवेदना की कविता	डॉ0 वीरेन्द्र कुमार सिंह	13
5.	भारत में प्रौढ़ शिक्षा : संकल्पना एवं क्रियान्वयन	डॉ0 सुरेन्द्र पाल डॉ0 आलोक कुमार कश्यप	17
6.	भारतीय रेल में स्वच्छ भारत अभियान की प्रभावशीलता और आमजन की सहभागिता–एक परिप्रेक्ष्य	मोहन सिंह	22
7.	उपेक्षित बुजुर्गों की समस्याओं को बयां करती वर्तमान सदी की हिन्दी कहानियां	नेहा सिंह	26
8.	जनपद मीरजापुर के ग्रामीण क्षेत्र की परिवहन तंत्र की आर्थिक वृद्धि के रूप में विकास	रचना सिंह	29
9.	प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का युवाओं पर प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय अवलोकन	डॉ0 अवधेश चन्द्र मिश्रा एकता	33
10.	भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के खतरो एवं चुनौतियों में राष्ट्रीय सेवा योजना की भूमिका	डॉ0 नर्वदेश्वर पाण्डेय	39
11.	संत गरीबदास का शैल्पिक–चिन्तन	डॉ0 सुनील कुमार	43
12.	इक्कीसवीं सदी में उत्तर आधुनिकतावादी चिंतन (हिंदी साहित्य के विशेष संदर्भ में)	प्रा. बहिरम देवेंद्र मगनभाई	47
13.	21 वीं सदी और हिंदी दलित कवि	डॉ0 दिलीप कुमार कसबे	50
14.	दलित रचनाकार सूरजपाल चौहान और 'नया ब्राह्मण'	लक्ष्मी बाकेलाल यादव	55
15.	उत्तर आधुनिकता के संदर्भ में 'ईंधन' उपन्यास की समीक्षा	डॉ. भूपेंद्र सर्जेराव निकाळजे	60
16.	हिंदी भाषा : कम्प्यूटर और ई अनुवाद	डॉ0 प्रकाश कृष्ण कोपार्डे	64
17.	मिथक का स्वरूप, तत्व और व्युत्पत्ति	डॉ0 सचिन मदन जाधव	69
18.	आदिवासी हिंदी उपन्यासों में चित्रित नक्सलवाद की समस्या ('आमचो बस्तर', 'ग्लोबल गांव के देवता' और 'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ' उपन्यासों के विशेष संदर्भ में)	डॉ0 संजय नाईनवाड	73
19.	गांधीवादी नाटककार : डॉ. एन. चंद्रशेखरन नायर	डॉ0 पंडित बन्ने	78

Scanned with CamScanner

ISSN - 2229-3620
APPROVED UGC CARE

SHODH SANCHAR BULLETIN
Vol. 10, Issue 37 January-March 2020
Page Nos. 73-77

AN INTERNATIONAL BILINGUAL PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

आदिवासी हिंदी उपन्यासों में चित्रित नक्सलवाद की समस्या

('आमचो बस्तर', 'ग्लोबल गांव के देवता' और 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यासों के विशेष संदर्भ में)

डॉ० संजय नाईनवाड*

शोध सारांश

बुनियादी रूप में नक्सलवाद का उद्‌भव पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले के नक्सलबाड़ी गांव में हुआ था। नक्सलबाड़ी गांव के इस आदिवासी किसान आंदोलन को लेकर प्रतिक्रिया बंगला साहित्य में सबसे पहले प्रतिबिंबित हुई। महाश्वेता देवी का कालजयी उपन्यास, 'हजार चौरासीवें की मां' इसी आंदोलन से प्रेरित सशक्त रचना है। नक्सलबाड़ी से उठी ज्वालाओं की लपटें जैसे–जैसे फैलती गईं, वैसे–वैसे अन्य भाषाओं के साहित्य में भी खासकर बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना मध्यप्रदेश जैसे राज्यों और वहां की प्रादेशिक भाषाओं में भी उसका असर दिखाई देने लगा था। इन भाषाओं में लिखनेवाला रचनाकार हिंदी से भी जुड़ा होने के कारण हिंदी साहित्य इस आंदोलन से अछूता न रह सका। हिंदी के कथा साहित्य और काव्य में भी नक्सलबाड़ी आंदोलन को केंद्र में रखकर काफी कुछ लिखा गया है। इस लेख में 'आमचो बस्तर', 'ग्लोबल गांव के देवता' और मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' इन उपन्यासों के आधार पर नक्सलबाड़ी आंदोलन को समझने का प्रयास किया गया है।

Keywords : नक्सलबाड़ी, चारू मजूमदार, कम्युनिस्ट, माओ त्से तुंग, माओवाद, पीपल्स वार ग्रुप, बारूदी सुरंग, वनोपज, भूमि अधिग्रहण, बहुराष्ट्रीय कंपनियां, ठेकेदार, विश्व बैंक।

विषय विस्तार

भारत में नक्सलवाद की अवधारणा 70 के दशक में आयी। 1967 में पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले के नक्सलबाड़ी गाँव का एक आदिवासी किसान अदालत के दिए फैसले के आदेश पर अपनी जमीन जोतने के लिए गया परंतु जिस जमींदार के कब्जे में किसान की जमीन थी उसने न्यायालय के आदेश को धत्ता बताकर किसान को जमीन देने से इंकार किया और जमीन जोतने आए किसान की नौकरों के हाथों पिटाई की। इस घटना से बौखलाए किसानों ने चारू मजूमदार, कानु सान्याल और जंगल संथाल की अगुवाई में जमींदारों के कब्जे की जमीनें छीनने का सशस्त्र संघर्ष छेड़ दिया। नक्सलबाड़ी गाँव से यह आंदोलन शुरू होकर तमाम देश में फैला इस कारण इस संघर्ष को नक्सलवाद नाम से जाना जाता है। और "इस विचारधारा को मानने वाले नक्सलवादी कहे जाने लगे। फलतः इस लाइन पर चलने वाले लोग नक्सली और इनका राजनीतिक दर्शन तथा राजनीतिक लाइन नक्सलवाद का नाम पा गया।"[1] नक्सलबाडी आंदोलन के दौरान बहुत कुछ घटित हुआ था। बौखलां किसानों ने जमींदारों के कब्जे के धान्य के कोठरों को लूटा, जमीन के कागजात जला दिए, जमींदारों की हत्याएँ की गं, जिन–जिन जमींदारों ने किसानों की जमीनों पर अवैध रूप से कब्जा किया था, उन्हें गाँववालों ने अपने कब्जे में कर लिया।

चारू मजूमदार नक्सलबाड़ी आंदोलन के प्रणेता थे। वे चीनी कम्युनिस्ट नेता माओ त्से तुंग से काफी प्रभावित थे। उनका मानना था कि भारतीय मजदूरों और किसानों की दुर्दशा के लिए सरकारी नीतियाँ जिम्मेदार हैं। जिसकी वजह से उच्च वर्गों का शासनतंत्र और फलस्वरूप कृषितंत्र पर वर्चस्व स्थापित हुआ है। ऐसी न्यायहीन अत्याचारी व्यवस्था के वर्चस्व को मात्र सशस्त्र क्रांति से ही खत्म किया जा सकता है। इसी विचार से प्रेरित होकर 1967 में कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों की अखिल भारतीय समन्वय समिति गठित हुई थी। और चारू मजूमदार ने औपचारिक रूप से कम्युनिस्ट पार्टी से अलग होकर सरकार के विरोध में भूमिगत होकर सशस्त्र लड़ाई का आगाज किया। परंतु 1971 में भीतरी कलह एवं विद्रोह के चलते और चारू मजुमदार की मृत्यु के बाद यह आंदोलन कई धड़ों में विभाजित होकर अपने मूल लक्ष्य से विचलित हुआ। नतीजा आंदोलन को विकृतियों ने ग्रस लिया। वर्तमान में नक्सलवाद ने जो शक्ल अख्तियार की है वह 1967 के नक्सलबाड़ी आंदोलन से मेल नहीं खाती। ये आज की सच्चाई है। इसकी अनुभूति बस्तर को केंद्र में रख कर लिखा

*सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, एस.बी. झाडबुके महाविद्यालय, बार्शी, जि. सोलापुर (महाराष्ट्र)

Scanned with CamScanner

गया उपन्यास 'आमचो बस्तर' को पढ़ने से होती है।

नक्सलवाद से बस्तर का प्रत्यक्ष संबंध 1974 में आता है। इसके पहले बस्तर में नक्सलवाद की मौजूदगी नहीं थी। 1974 में छत्तीसगढ़ के भोपालपट्टनम में डकौती की तीन घटनाएँ घटीं जो बस्तर में नक्सलवाद की आरंभिक घटनाएँ थीं। उन दिनों बस्तर से सटे आंध्र प्रदेश में नकसली धड़े सक्रिय थे। वहाँ कोंडापल्ली सीतारमैया सशस्त्र संघर्ष में लगे हुए थे। उन्हें पुलिस से बचने के लिए घने वनों में आश्रय आवश्यकता थी। अतः उन्होंने 80 के दशक में पाँच से सात सदस्यों को अलग–अलग गुटों में बाँटकर चार दल दक्षिणी तेलंगना, एक दल महाराष्ट्र के गढ़चिरौली तथा अन्य दो दलों को बस्तर में भेज दिया। बस्तर तीन राज्यों की सीमा से सटा घने जंगलों से घिरा इलाका है जो नक्सलियों को स्थिर होने, उनके संपर्क एवं संगठन की दृष्टि से सुविधाजनक था। सरकार की विकास नीतियाँ बनाने वाले प्रशासनिक अमले द्वारा इरादतन आदिवासी इलाकों को विकास से दूर रखने की नीति का नक्सलियों ने लाभ उठाते हुए अपनी जड़ें बस्तर में जमायीं।

असल में बस्तर में नक्सलवाद किसी आंदोलन, शोषण या अपने आप से पैदा हुए गुस्से से पैदा नहीं हुआ था। पर आज रोटी–कपड़ो–मकान–पानी–बिजली–सड़क जैसे मुद्दों को ही बस्तर में नक्सलवाद के पनपने का कारण बताया जाता है, जो कि सच नहीं है। शुरूआत में नक्सलियों ने आदिवासियों को अपनी ओर आकर्षित करने, उनकी सहानुभूति प्राप्त करने और अपनी जड़ें मजबूत करने के लिए बाँस से लेकर तेंदूपत्ता जैसे जंगलों के उत्पादों की सही मजदूरी दिए जाने की माँग उठाई। ठेकेदारों को गाँववालों के सामने ही पीटा। विश्व बैंक द्वारा पाईन के पेड़ लगाने के प्रोजेक्ट का विरोध किया। इन जैसी चीजों ने आदिवासियों में नक्सली उनके रहनुमा हैं ऐसी भावना निर्मित हुई। उपन्यास का एक पात्र मलकाम शैलेष से कहता है, "ये मोटे–मोटे काम हैं जो बस्तर में नक्सली अभियान की शुरूआत में किए गए.....बस्तर के आदिवासियों को अपने साथ जोड़ने के लिए उठाए गए शुरूआती जरूरी कदम थे। अब तो अस्सी का दशक बीत चुका है। मुझे इन उंगली पर गिनायी गयी घटनाओं के अलावा बताओ बस्तर में अढ़सठ से लेकर आज तक नक्सलियों ने किस मजदूर या किसान आंदोलन की अगुवाई की है?"[2]

उपन्यास में इस तथ्य को भी उजागर किया है कि बस्तर में आदिवासियों के नक्सलवाद की ओर आकृष्ट होने के मूल में बस्तर का विकास से कटे रहना व बस्तर की पिछड़ेपन की समस्या भी सहायक रही है। मरकाम इस पर जल भुनभुनाता हुआ शैलेश से कहता है, "सरकार बस्तर को आदिवासी संस्कृति, सभ्यता और परिवेश की सुरक्षा के नाम पर संरक्षित क्षेत्र घोषित किए हुए है। अबुझमाड़ के इलाके में सन सत्तर के दशक में एक कलेक्टर ने यह कहकर वहाँ बन रही सड़क का विरोध किया कि इससे आदिवासी संस्कृति नष्ट हो जाएगी। सरकार ने अबुझमाड़ को संरक्षित इलाका बना दिया। आज भी यदि वहाँ जाना हो तो कलेक्टर की अनुमति लेनी पड़ती है। उपर से सरकार बस्तर में कोई परियोजना उद्योग–व्यवसाय शुरू करने में रूचि नहीं दिखाती। बस्तर में अंधाधुंध औद्योगीकरण की आवश्यकता नहीं है परंतु कुछ परियोजनाएँ शुरू होनी चाहिए। यदि विकास नहीं होगा, रोजगार नहीं रहेगा तो नक्सलवादी फैलते रहेंगे।.....विकास और रोजगार की एक उम्मीद जगी नहीं कि बस्तर के मसीहा बनकर महानगरों से विरोध के स्वर फूट पड़ते हैं।"[3] बस्तर में व्यवस्था, जमींदार, कारखानदार व ठेकेदारों की प्रताड़ना से तंग आकर भी कई आदिवासी नक्सलवाद का रूख कर चुके हैं। उपन्यास का ठुरलू ऐसा ही एक पात्र है जिसकी प्रेमिका बोदी से बैलाड़िला खदान के ठेकेदार का मुंशी बहला फुसला कर अनौतिक संबंध स्थापित करता है। ठुरलू जब देखता है कि बोदी के साथ मुंशी ने जबरदस्ती यौन संबंध बनाएँ हैं तो वह गुस्से में आकर उसकी हत्या कर देता है। पुलिस से बचने के लिए फिर वह बदहवास होकर जंगल का रूख करता है। जंगल में जाकर वह जंगल का ही हो जाता है। उपन्यास का पात्र मरकाम कहता है, "ठुरलु का नक्सलवादी हो जाना परिस्थितियों का परिणाम है, किसी विचारधारा का नहीं। दादा लोगों को बस्तर में अपने–आप को मजबूत करने के लिए ठुरलू जैसे और लोग चाहिए। इस तरह की घटनाओं ने बागी और डाकू भी बहुत पैदा किए हैं।"[4]

असल में राह भटके व अपने मूल लक्ष्य से विचलित हुए नक्सलियों को आम आदिवासियों के सुख–दुःख से कोई सरोकार नहीं है। उपन्यास में चित्रण है कि छत्तीसगढ़ के नक्सल प्रभावित इलाके में सरकार द्वारा चुनाव आयोजित किए थे। परंतु पीपुल्स वार ग्रुप ने चुनाव पर बहिष्कार की धमकी दी थी। बावजूद इसके चुनाव हुए। चुनाव संपन्न कराने के बाद निर्वाचन दल के लौटते समय नक्सलियों ने बारूदी सुरंग के विस्फोट से निर्वाचन दल की टीम की जीप को उड़ा दिया। विस्फोट में इंसानी लाशें टुकड़ों–टुकड़ों में छितरा गई जीप के परखच्चे उड़ गए। उपन्यास में सवाल उठाया गया है कि इस तरह का खून खराबा किसलिए? क्या एक सरकारी क्लर्क सर्वहारा की सत्ता के स्वप्न के राह का रोड़ा बन गया था? क्या वह बहुराष्ट्रीय कंपनियों और पूंजीपतियों के एजेंट की तरह जंगल के अंदरूनी इलाकों में प्रविष्ट हुआ था? या मतपत्र के बक्सों को ले जाने का मतलब यह है कि सरकार का पिट्ठू हो जाना जिसके लिए नक्सलियों ने मौत का प्रबंध कर रखा है? या क्लर्क होने के नाते उस व्यक्ति का जल–जंगल–जमीन से हक उठ चुका है? क्या सरकारी कर्मी को मौत के घाट उतार कर दिल्ली हिल गयी? क्या क्रांतियाँ ऐसी होती हैं? सच तो यह है कि बस्तर में नक्सलियों ने सपाट परिभाषा गढ़ी हुई है, "जो उनके फरमान के साथ नहीं वह उनका दुश्मन। यहाँ किसी तरह के भ्रम की या रहम की गुंजाईश नहीं है। क्रांति

Scanned with CamScanner

सोचने की बात है। असल में बहुत वर्षों से इस इलाके से बॉक्साइट बाहर न भेजकर यहाँ कारखाना खोलने की बात चल रही थी। और वेदांग शायद उसी टोह में इस इलाके में आ रहा था। सभी सैंतीस गाँवों के बाशिंदे मिलकर भेड़िया अभयारण्य के नाम पर आदिवासियों को उजाड़ने के षडयंत्र का विरोध करने के लिए लालचन असूर के नेतृत्व में संघर्ष समिति बनाकर जनता कर्फ्यू लगाकर इलाके में पुलिस प्रशासन का आना–जाना बंद कर देते हैं। आंदोलकों द्वारा सखुआ के पेड़ों को काटकर सड़कें बंद कर दी जाती हैं। इलाके में खदान बंद, काम बंद, बॉक्साइट की ढुलाई बंद। हालांकि यह विरोध शांतिकामी था। परंतु विरोध को दबाने के लिए पाथरपाट पुलिस चौकी में सशस्त्र बल के जवान बुलाए जाते हैं। पहले तो विरोध करने वाले लोगों के साथ मारपीट की जाती है। परंतु संघर्ष समिति की अगुवाई में चल रहा आंदोलन और आंदोलनकारी पीछे हटने के लिए तौयार नहीं थे। चौकी के सामने ही धरना देकर बैठे और लोगों को संबोधित करते आदिवासियों को देखकर पुलिस बौखला जाती है। दोनों गुटों में आपसी झड़प होती है। निहत्थे आदिवासियों पर पहले से ही योजना बनाए पुलिस फायरिंग करती है। इसमें छह आदिवासियों की मौतें होती हैं। घटना को दबाने के लिए पुलिस कोशिशें करती दिखाई देती है। इस घटना को लेकर अखबार के तीसरे पेज पर खबर कुछ यूँ छपी – ''पाथरपाट में हुई पुलिस मुठभेड़ में छह नक्सली मारे गए। मारे गए नक्सलियों में कुख्यात एरिया कमांडर बालचन भी शामिल। फिर बालचन के नृशंस कारनामों का विवरण। किस एस.पी., दरोगा की हत्याओं और किन–किन बैंक डकैतियों में वह शामिल रहा था। एकदम आँखों देखा विवरण। अंत में इस बात का भी उल्लेख था कि भागते समय नक्सली लाशें उठा ले गए। पुलिस फोर्स लाशों की तलाश कर रही है।''[7] सरकार द्वारा इस तरह की जघन्य कारवाई करना और गोदी मीडिया का ऐसी खबरें नियोजनबद्ध रीति से में छापना आदिवासियों की छवि धूमिल करने और उनके विरोध में माहौल निर्मित करने की साजिश है।

'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ' उपन्यास के माध्यम से भी माओवाद को समझ जा सकता है। उपन्यास में आए संदर्भों की माने तो नक्सलबाड़ी आंदोलन के कुछ वर्ष पूर्व ही माओवादियों ने कैमूर की पहाड़ियों से अपना काम आरंभ कर दिया था। और दुर्गम पहाड़ियों तथा जंगलों के रास्ते उन्होंने झारखंड में प्रवेश किया था। ये माओवादी पहाड़ जंगल को अपनी शरणस्थली बनाते हैं और समतल क्षेत्र में आक्रमण के बाद जंगलों–गुफाओं में पनाह लेते हैं। उपन्यासकार के अनुसार ''उन लोगों ने वन क्षेत्रों के माध्यम से झारखंड, बिहार, बंगाल, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ और उड़ीसा के कालाहांडी क्षेत्र से लेकर आंध्र प्रदेश तक अपना साम्राज्य फैला लिया। और उन मार्गों से आम लोगों और पुलिस प्रशासन की दृष्टि से ओझल रहते हुए विचरण करते हैं।....वे अलग राज्य की मांग नहीं करते बल्कि सत्ता के बुनियादी चरित्र को बदलना चाहते हैं। उन्हें भरोसा है कि हथियारों के बल पर लगातार मुक्त क्षेत्र का विस्तार करते जाएँगे और एक दिन अपनी सत्ता कायम करेंगे।''[8] उपन्यास पढ़ते समय हम अवगत हो जाते हैं कि झारखंड में पनपा नक्सलवाद यहाँ की विषम परिस्थितियों का प्रतिफलन है। सरकार ने 1951 से 1990 के बीच विकास के नाम पर देश में लगभग 85 लाख आदिवासियों को उजाड़ा है। उजाड़े गए आदिवासियों में से अब तक तीन चौथाई का पुनर्वास तक नहीं हो पाया है। रोजगार तो बहुत दूर की बात है, सरकारें आदिवासियों को जीवनयापन की न्यूनतम सुविधाएँ तक नहीं दे सकी हैं। आदिवासियों के विकास के लिए जो कुछ थोड़ी बहुत राशि सरकार द्वारा भेजी जाती है उसकी लूट को आदिवासी खुलेआम देखते हैं। आज सरकार ने आदिवासियों को वन और उनके वनाधिकार से बेदखल कर दिया है। वन विभाग के अधिकारी और जंगल माफियाओं को आदिवासियों के हक के जंगल की कीमती लकड़ी अवैध रीति से बेचने की छूट हैं। लेकिन आदिवासी अपने इस्तेमाल के लिए या पेट भराई के लिए छोटे–मोटे पेड़ों को काटते हैं तो उन्हें वन विभाग झूठे मुकदमे में फंसाकर हवालात में बंद कर देता है। कई बार जंगल माफियाओं की करतूत को वनविभाग आदिवासियों के माथे मढ़ कर उन्हें अपराधी सिद्ध करता है और जो कुछ आदिवासी बेहद दुर्गम पहाड़ी इलाकों में बसे होने के कारण गरीबी की मार नहीं झेल पाए उन्होंने हथियार उठाए। ''ऐसे में जब एमसीसी के सदस्यों ने आकर उनकी भावनाओं को सहलाया, उन्हें तमाम समस्याओं से उबारने का भरोसा दिलाया तो वे उनकी तरफ झुक गए। देखते ही देखते उनके साथ सैंकड़ों युवक–युवतियों का जत्था खड़ा हो गया।''[9]

आजादी के बाद भी देश का आदिवासी इलाका हाशिए पर धकेला गया। उनके साथ न्याय नहीं हुआ। नतीजा उग्रवाद, माओवाद और नक्सलवाद फैलता गया। और यहां के आदिवासी इलाकों में 2001 से नक्सली घटनाएँ घट रही हैं। नक्सलवाद को रोकने के लिए बुनियादी कदम उठाने जरूरी है। आदिवासियों को विकास का लाभ समय रहते ही मिलना चाहिए। बाहरी लोग आदिवासी इलाकों में लाकर स्थापित हो रहे हैं और आर्थिक रूप से ताकतवर बनते जा रहे हैं।

आदिवासियों के जल, जंगल जमीन की लूट ऐसे बाहरी लोगों की ओर से हो रही है।

सरकार विकास और परियोजनाओं के नाम पर आदिवासी इलाकों की जमीनें अधिग्रहित कर रही हैं। लेकिन आदिवासियों को इसका कोई लाभ नहीं मिल रहा है। और सबसे महत्वूपर्ण बात भारतीय संविधान के समानता के तत्व का पालन करते हुए आदिवासियों तक विकास की गंगा पहुंचती तो नक्सली घटनाएँ रूकतीं और स्थितियाँ इतनी विकट नहीं होतीं।

CS Scanned with CamScanner

समापन

उपरोक्त रीति से नक्सलवाद की अवधारणा और उसके स्वरूप पर विचार किया गया है। नक्सलवाद आज अपने मूल लक्ष्य से भटक गया है। देश के लिए यह समस्या नासूर बन गयी है। सामाजिक विषमता को मुद्दा बनाकर नक्सलवाद शोषण, लूट और मारकाट का कारोबार चला रहा है। राजनीति और नक्सलवाद का गठजोड़ मजबूत बनता जा रहा है। नक्सलवाद ने अब पूरी तरह से हिंसा का रास्ता अपनाया है, हिंसा से कभी किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। सरकार द्वारा नक्सलवादियों को मुख्यधारा में लाने के लिए व्यापक कदम उठाने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ :–

1. लालेंद्र कुमार कुंदन, नक्सलवाद : उद्‌भव और विकास, क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, प्र.सं.2010, पृ.9
2. राजीव रंजन प्रसाद, आमचो बस्तर, यश पब्लिकेशंस, नवीन शहादरा, दिल्ली, प्र.सं. 2014 पृ.69
3. वहीं, पृ.109
4. वहीं, पृ.116
5. वहीं, पृ.134
6. वहीं, पृ.285
7. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, द्वि सं. 2010 पृ. 228
8. महुआ माजी, मरंग गोडा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं 2012, पृ. 337
9. वहीं, पृ.337

❐❐❐

Scanned with CamScanner